THE TIMES OF INDIA

Date: 21-05-26

Let Our Teens Be

Nepal's done well to actively consider decriminalising teenage sexuality. India must do the same

TOI Editorials

A shoutout to Nepal's law minister. Her first decision, on assuming office on April 26, was to review their rape law that criminalises teen sexual relations. Her task force's recommendation: include a close-in-age exemption, as is done across liberal societies. This, hopefully, will soon be legislated. There is little as harmful to growing minds and bodies as criminalising teen sexuality, exploration and sexual relations. Nepal's age of consent, as in India, is 18. In India, a close-in-age exemption was, unjustifiably, not included when Pocso was legislated, despite repeated cautions – from policy wonks, legal experts, health & behavioural specialists and so on. Upshot: India too sends teens in consensual sexual relations – if discovered by ever-disapproving adults – to jail. The girl has no legal say, at all. And her close-in-age friend is pushed into the criminal justice system, his future in tatters. Fallout is traumatic, ruinous, and inflicts lifelong damage. One analysis found that 80% of "romantic" cases under Pocso "were filed by parents or relatives after a girl eloped or became pregnant."

India's SC and several HCs – Allahabad, Madras, Delhi – have repeatedly observed, while hearing cases of criminalised teen sex, that Pocso has resulted in victimising the very kids law aims to protect. Of course, there's always the upholder of toxic patriarchy, like the Calcutta HC judge who found it his remit to suggest "teen girls should control their urges". A tongue-lashing from SC doesn't take away the fact that patriarchal attitudes – in courts, policy corridors and Parliament – are anything but rare, ever taking new shape and form. India's messy reality, additionally, is that while Pocso criminalises sex below age 18, sex with an underage wife is perfectly legal. Child marriage is illegal, but underage sex law doesn't apply. The law is confused, because lawmakers are confused. Because society, and tragically, the law, views growing teens not as individuals with autonomy, but in terms of parents' ownership & control, investment & returns (disguised as child's 'future'), and as keepers of family 'honour'.

India must follow Nepal's example – renew the move to incorporate age-gap leniencies in law. Free India's teenagers from every passing elder who magically transforms into an advisory body. Let's let teenagers be.

Date: 21-05-26

Who You Calling Old?

People over 60 are increasingly fitter, wealthier & full of zest for life. The trend will grow stronger

TOI Editorials

At 82, Billie Jean King, yes, she of the 39 Grand Slam titles, has got herself a new one: College graduate. Why is this making headlines? Because it rudely interrupts retirement mythology, which in US remains coloured by the golf-grand children-Florida idea. Or escape, from cold, from work, from obligation. The Indian version features quiet demotion to the back bedroom of the eldest son's home, cushioned by a second one in Goa or the hills. But as some readers would know first-hand, these clichés are ageing faster than people. Well-off professionals Mumbai to Bengaluru have a very different biological curve than their parents did. If they're going to have a long, healthy, wealthy later life, why shouldn't it be purposeful?

Director of the MIT AgeLab, Joseph Coughlin, underlines that a) by 2047 there will be more people in the world over 60, with more money and education than any other time in history, than children under 15, and b) the longevity economy is already enormous enough to be the third largest after US and China. This means the old story of needy older people needs to be rewritten. By businesses, employers, govts. Of course, extending working life by choice is a luxury of the higher-income, higher-education, and better-health workers. With only 12% of India's workforce covered by a formal pension scheme, the story remains pre-industrial for most of the rest. As in, for much of human history, retirement simply didn't exist, and old age was just the final, harder chapter of working life.

But the ones who can choose, are perhaps the most un-herd-like generation ever. As Lynda Gratton and Andrew Scott say in their influential book, The 100-Year Life, the longer your life, the more your identity reflects what you craft, rather than a reactive response to where you began. There will be a variety of careers. And while savings will provide the baseline of security, new skills and sustained relationships will count for a lot too. Indeed, research has shown that the single strongest predictor of happiness in later life is the quality of your close relationships. A 100-year-old human is still a human.

दैनिक भास्कर

Date: 21-05-26

क्या यह संकट बीतने के बाद भी हम सादगी का सबक याद रखेंगे?

नंदितेश निलय वक्ता, (एथिक्स प्रशिक्षक एवं लेखक)

ऊर्जा संकट के बीच देश में विभिन्न क्षेत्रों के लीडर्स अपनी बड़ी कारों और उसके काफिले को छोड़ साइकिल या पब्लिक ट्रांसपोर्ट पर सवारी करते दिखे। 1970 के दशक के दौरान भी वह दौर आया था, जब तेल संकट के बीच संसार के कई देशों में परिवहन व्यस्था में बदलाव आया।

तब नीदरलैंड, डेनमार्क और यूरोप के कई देशों में साइकिल-लेन का विस्तार किया गया और सार्वजनिक परिवहन को प्राथमिकता दी गई। भारत में भी अब प्रधानमंत्री ने नागरिकों से पेट्रोल और डीजल का इस्तेमाल कम करने, मेट्रो और बसों का उपयोग करने या साइकिल चलाने का आग्रह किया है।

लेकिन यह बदलाव सिर्फ थोड़े समय के लिए है या यह भविष्य में इस देश का परिवहन-व्यवहार भी बन जाएगा? यह जो वीआईपी कल्चर है और जो गाड़ियों के काफिले धूल उड़ाते भागते हैं, क्या उनकी गति कुछ धीमी हो पाएगी? आखिर हमें मानना पड़ेगा कि वो सारे लोग जो अभी तक बड़ी-बड़ी गाड़ियों में चलते रहे, उन्हें पब्लिक ट्रांसपोर्ट को उपयोग में लाने से कोई गुरेज नहीं और न ही अपने प्राइवेट जेट को छोड़ आम उड़ान भरने से। यह कितना संतोषजनक होगा कि खास लोग भी आम लोगों की तरह घर से ऑफिस का सफर कर सकते हों और उन्हें किसी तरह का विशिष्टता-बोध नहीं हो।

लेकिन जिस दिन युद्ध रुकेगा, जिस दिन होर्मुज जहाजों को हंसते-हंसते विदा करेगा, क्या उसके बाद भी सफर का साधन वही साइकिल और पब्लिक ट्रांसपोर्ट रहेगा? क्या 'ऑस्टेरिटी' (मितव्ययिता) एक तात्कालिक बदलाव का ही पहलू नहीं बनेगा, बल्कि वह जीवन जीने का आचरण भी बन पाएगा?

ऑस्टेरिटी को दो अर्थों में समझा जाता है- पहला जीवन-शैली के रूप में और दूसरा आर्थिक नीति के अर्थ में। जीवन-शैली के रूप में ऑस्टेरिटी का अर्थ हिंदी में सादगी, तपस्या, संयम और कठोरता जैसे गुण हैं। यानी भौतिक सुखों, फिजूल के खर्च और जरूरत से ज्यादा आराम को छोड़कर सादा जीवन जीना।

आर्थिक संदर्भ में अगर हम देखें तो ऑस्टेरिटी का तात्पर्य यह है कि खर्च कम किया जाए और जो खर्च कर रहे हैं, उनमें भी कटौती की गुंजाइश रहे। लेकिन युद्ध के समाप्त होने के बाद ऑस्टेरिटी का कौन-सा अर्थ समाज में प्रासंगिक रह जाएगा? क्या हम जीवन को सादगी से जीने की कोशिश करेंगे और अपनी आदतों में अत्यधिक भौतिक सुखों और खर्चों से बचेंगे?

खैर, कोई भी संकट सकारात्मक बदलाव की गुंजाइश तो पैदा करता ही है। कोविड के समय हमने यह महसूस किया कि उपभोक्ता बना व्यक्ति कैसे अपने आप को उस मितव्ययिता के साथ रखना चाह रहा था, जो सादगी और संयम से तो निर्देशित हो ही रही थी, साथ-साथ हर तरह के आर्थिक आकर्षण से भी कोसों दूर थी। जीने की जिजीविषा थी और जीना एक साहसिक कार्य ही माना गया। वह दौर तमाम तरह के इंफ्लुएंसर्स को दिन-रात सुनता रहा और खुद को मोटिवेट भी करता रहा। कारें गैरेज में खड़ी रहीं और कभी-कभार गर कुछ घुमा तो वह साइकिल का पहिया ही था।

आज फिर हमारे देश में हर उस व्यक्ति के लिए यह एक मौका है कि वह भविष्य में भी अपने आप को उस मितव्ययिता के इर्द-गिर्द रखें। क्योंकि कहा जाता है कि हर बादल में चांदी की रेखा होती है। यह कितना कमाल का दृश्य होगा, जब तेल संकट के समाप्त होने के बाद भी एक आमजन की तरह लीडर्स पब्लिक ट्रांसपोर्ट या किसी साइकिल से आते-जाते दिखेंगे। किसी बड़ी कंपनी के चेयरमैन भी कभी मेट्रो में बैठे दिख जाएंगे। यह भी देखना संतोषजनक होगा कि संसाधनों में शक्ति ढूंढता समाज वास्तविक शक्ति सादगी वाली जीवनशैली में पा रहा होगा।

Live हिन्दुस्तान .com

Date: 21-05-26

क्या एसआईआर से सचमुच असर पड़ा

रोशन किशोर, (राजनीतिक आर्थिक संपादक, एचटी)

भाजपा को जीत क्या एसआईआर की वजह से मिली है? पश्चिम बंगाल के संदर्भ में यह एक विवादास्पद सवाल बनता जा रहा है। गौरतलब है कि पिछले साल से निर्वाचन आयोग ने जिन 14 राज्यों और केंद्रशासित प्रदेशों में मतदाता सूचियों का विशेष गहन पुनरीक्षण (एसआईआर) किया है, उनमें से छह राज्यों व केंद्रशासित प्रदेशों में चुनाव हुए हैं, पर बंगाल इस मामले में सबसे विवादास्पद साबित हुआ, क्योंकि यहां 27 लाख मतदाता 'विचाराधीन' (अंडर एडजुडिकेशन) होने के कारण अयोग्य साबित कर दिए गए, यहां तक कि चुनाव के दिन भी वे अपने मताधिकार की बाट जोहते रह गए, जबकि करीब 62 लाख मतदाताओं के नाम एसआईआर में कटे हैं।

एसआईआर से जुड़ी सांविधानिक व राजनीतिक नैतिकता को एक किनारे रख दें और ठोस चुनावी आंकड़ों पर गौर करें, तो भाजपा की इस जीत का मूल कारक एसआईआर नहीं दिखता। इसे समझने के लिए तीन सवालों के जवाब तलाशते हैं। पहला सवाल है- पार्टियों के पारंपरिक गढ़ से बाहर एसआईआर का क्या असर रहा? दूसरा, मुस्लिम मतदाता इस प्रक्रिया से कितने प्रभावित हुए? और तीसरा, पश्चिम बंगाल में भाजपा की जीत की असली वजह क्या रही?

शुरुआत पहले सवाल से करते हैं। साल 2011, 2016 और 2021 के विधानसभा चुनावों में तृणमूल और उसके सहयोगियों को क्रमश: 226, 211 और 215 सीटें मिली थीं। उन्होंने इन तीनों चुनावों में 124 सीटों पर हर बार जीत दर्ज की। मैं यहां 2011 से पहले के चुनावों को शामिल नहीं कर रहा, क्योंकि 2008 के परिसीमन में विधानसभा क्षेत्रों की सीमाएं बदल गई थीं।

बहरहाल, तृणमूल और उसके सहयोगियों को इस बार अपने गढ़ वाले 124 विधानसभा क्षेत्रों में से 78 में हार का सामना करना पड़ा है (इनमें से एक में चुनाव स्थगित है) और इन सभी क्षेत्रों से बाहर केवल 34 सीटें जीतने में उनको सफलता मिली है।

इसके बरअक्स, भारतीय जनता पार्टी ने साल 2019, 2021 और 2024 के चुनावों में क्रमश: 121, 77 व 90 विधानसभा सीटों पर बढ़त हासिल की (यहां 2019 और 2024 के लोकसभा चुनाव नतीजों को विधानसभावार बांटा गया है)। उसे इन सभी चुनावों में कुल 54 विधानसभा क्षेत्रों में हर बार जीत मिली। इस बार भाजपा ने इन 54 विधानसभा क्षेत्रों के साथ-साथ गुजरे तीनों चुनावों में कभी-न-कभी जीती गई सभी 142 सीटों पर भी विजय का परचम लहराया है। इसके अलावा, उसके खाते में 65 ऐसी सीटें भी आई हैं, जिन पर वह पहले कभी नहीं जीत सकी थी।

अगर किसी को बंगाल के इस नए घटनाक्रम को समझना है, तो उसे राज्य के चुनावी नतीजों पर एसआईआर के असर की जांच करनी चाहिए, पर उन 100 मजबूत विधानसभा सीटों को छोड़कर, जो 2026 में भी तृणमूल और कांग्रेस के पास ही रहीं। सवाल है कि इनमें से कितने क्षेत्रों में 2024 और 2026 के बीच मतदान में गिरावट देखी गई? जवाब है- 20, जिनमें से 2019, 2021, 2024 व 2026 में भाजपा 13 सीटों पर हर बार आगे रही, जबकि तृणमूल 2011, 2016, 2021 और 2026 में सात सीटें जीतीं (यह मंगलवार रात 10 बजे तक का आंकड़ा है)। बेशक, इन निर्वाचन क्षेत्रों में एसआईआर के कारण 2.1 प्रतिशत से लेकर 38.6 प्रतिशत मतदाताओं के नाम कटे हैं। किंतु, जब तृणमूल या भाजपा के वोट प्रतिशत में बदलाव और एसआईआर के कारण मतदाता-संख्या में आई कमी के बीच तुलना की जाती है, तो दोनों में दूर-दूर तक कोई रिश्ता नहीं दिखता।

दूसरा सवाल। एसआईआर के तहत धर्म-विशेष के मतदाताओं के नाम को 'पक्षपातपूर्ण तरीके' से हटाने का आखिर क्या असर पड़ा? एसआईआर को लेकर यह आरोप जोर-शोर से उछला है कि इसके तहत उन जिलों में मतदाताओं के नाम ज्यादा हटाए गए, जहां मुस्लिम आबादी अधिक है। पश्चिम बंगाल में 39 विधानसभा क्षेत्र ऐसे थे, जहां से 2011, 2016 और 2021 के चुनावों में मुस्लिम विधायक चुने गए थे। इन 39 सीटों में से 18 सीटें उन जिलों में थीं, जहां 2011 की जनगणना के अनुसार मुस्लिम आबादी का अनुपात 50 फीसदी या उससे अधिक था। इस बार भी इनमें से 34 विधानसभा क्षेत्रों में मुस्लिम विधायक चुने गए हैं, जिनमें से महज पांच वास्तव में गैर-तृणमूल उम्मीदवार हैं। शेष पांच सीटें भाजपा के खाते में गई हैं।

पश्चिम बंगाल की नवनिर्वाचित विधानसभा में मुस्लिम विधायकों की कुल संख्या 40 है। साल 2021 में भी उनकी संख्या कमोबेश इतनी ही थी। अलबत्ता तृणमूल विधायकों में मुस्लिम विधायकों की हिस्सेदारी बढ़कर 42.5 प्रतिशत हो गई है। साफ है, यह सांप्रदायिक ध्रुवीकरण का उदाहरण है, न कि मतदाता-सूची में कथित हेर-फेर का नतीजा। असम में कांग्रेस भी इसी गफलत का शिकार हुई है।

ऐसे में, तीसरा सवाल महत्वपूर्ण बन जाता है कि पश्चिम बंगाल में भाजपा की जीत का असली कारण क्या था? इसका जवाब है, सत्ता विरोधी लहर। लोगों पर इसका भारी असर दिखा है, शेष कसर ध्रुवीकरण ने पूरी कर दी। 2021 से 2026 के बीच तृणमूल ने 293 विधानसभा क्षेत्रों में से 268 में अपना मत-प्रतिशत गंवाया है। इनमें से 69 सीटों पर उसे 10 प्रतिशत से अधिक का नुकसान हुआ है। इसके उल्ट, भाजपा ने 293 विधानसभा सीटों में से 270 में अपना मत-प्रतिशत बढ़ाया है और 95 सीटों पर उसे 10 प्रतिशत से अधिक का लाभ मिला है।

जन-समर्थन में आए इस बदलाव के गहरे निहितार्थ हैं। ऐतिहासिक तथ्यों से इसे समझना आसान होगा। दरअसल, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) के नेतृत्व वाले वाममोर्चा ने 2006 की अपनी शानदार जीत और 2011 की करारी हार के बीच 11 प्रतिशत मत गंवाए थे। परिसीमन के कारण किए गए बदलावों के कारण इस परिवर्तन का क्षेत्रवार सटीक विश्लेषण संभव नहीं है, पर 2026 में तृणमूल के मत-प्रतिशत में लगभग 4.7 प्रतिशत की गिरावट हुई है, जो वाममोर्चा की तुलना में कम है। यही कारण है कि ममता बनर्जी 2011 के वाममोर्चे की तुलना में अपनी सीटों की संख्या को कहीं अधिक बचाए रखने में सफल रही हैं।

हालांकि, तृणमूल कांग्रेस के सामने अब भी एक बड़ी चुनौती शेष है। अगर बचे हुए हिंदू मतदाता भाजपा या राज्य की अन्य विपक्षी पार्टियों का रुख कर लें, तब क्या होगा? ये मतदाता अब तृणमूल के खिलाफ मुखर हो सकते हैं, क्योंकि वह भाजपा से हार चुकी है। जाहिर है, पश्चिम बंगाल की राजनीति अभी खत्म नहीं हुई है।